इकाई 21 कृषि उत्पादन

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य

इस इकाई में अध्ययनरत काल में भारत के कृषि उत्पादन के बारे में विचार किया जाएगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- अध्ययनरत काल में खेती के प्रसार का उल्लेख कर सकेंगे;
- खेती और सिंचाई के साधनों और तरीकों को रेखांकित कर सकेंगे;
- उपजाई जाने वाली प्रमुख फसलों की जानकारी दे सकेंगे; और
- पशुधन तथा पशु पालन की स्थिति पर प्रकाश डाल सकेंगे।

21.1 प्रस्तावना

भारत के विस्तृत भू-भाग में विभिन्न प्रकार के भौगोलिक क्षेत्र हैं। इसके पूरे इतिहास में कृषि सर्वप्रमुख उत्पादक गतिविधि रही है। मुगल काल में भी भू-भाग के विस्तृत क्षेत्रों में खेती की जाती थी। इस काल के भारतीय और विदेशी लेखकों ने भारतीय मिट्टी की उर्वरता की प्रशंसा की गई है।

इस इकाई में हम कृषि के विभिन्न आयामों के साथ-साथ खेती के विस्तार अर्थात् जोती जाने वाली भूमि पर भी विचार करेंगे। भारत में कई प्रकार की खाद्यान्न फसल, फल, सब्जी और नगद फसलें उपजाई जाती थीं। हमारे लिए इन सभी पर विचार कर पाना संभव नहीं होगा अतः हम कुछ प्रमुख फसलों का ही उल्लेख करेंगे। खेती के तरीके के साथ-साथ खेती में काम आने वाले औजारों और सिंचाई तकनीक की भी चर्चा करेंगे। यहां हम मुगल नियंत्रण में पड़ने वाले क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित करने के साथ-साथ इसके नियंत्रण के बाहर पड़ने वाले क्षेत्रों की भी चर्चा करेंगे।

21.2 खेती का विस्तार

विस्तृत आंकड़ों के अभाव में जोती जाने वाली कुल भूमि का ठीक-ठीक अनुमान लगाना कठिन है। फिर भी उपलब्ध आंकड़े की सहायता से मुगल काल में खेती की जाने वाली भूमि का एक अंदाज लगाया जा सकता है।

अबुल फज़ल ने अपनी कृति **आइन-ए अकबरी** में बंगाल, थट्टा और कश्मीर को छोड़कर उत्तर भारत के सभी मुगल प्रांतों से संबद्ध क्षेत्रीय माप के आंकड़े प्रस्तुत किए हैं। दिल्ली, आगरा, अवध, लाहौर, मुल्तान, इलाहाबाद और अजमेर जैसे अधिकांश प्रांतों के मामले में प्रत्येक परगना (कुछ अपवादों को छोड़कर) के लिए अलग से आंकड़े उपलब्ध हैं।

आइन-ए अकबरी में दिए गए आंकड़े 1595 ई. के आसपास के है। 1686 ई. की लेखा संबंधी एक नियम पुस्तिका में 17वीं शताब्दी के विभिन्न प्रांतों के क्षेत्र संबंधी आंकड़े उपलब्ध हैं। **चहार गुलशन** (1739-40) ई.) नामक ऐतिहासिक कृति में भी ये आंकड़े पुनः प्रस्तुत किए गए हैं। इस नियम-पुस्तिका में प्रत्येक प्रांत के मापित क्षेत के आंकड़े दिए गए हैं। प्रत्येक प्रांत में गांवों की कुल संख्या दी गई है इसमें मापित और गैर मापित गांवों की संख्या भी उपलब्ध है।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है **आइन-ए अकबरी** में अधिकांश मामलों में प्रत्येक परगना का क्षेत्र संबंधी आंकड़ा दिया गया है पर यह कहना मुश्किल है कि परगना के कितने क्षेत्र को वास्तविक रूप में मापा गया था। औरंगजेब के शासनकाल से मिले आंकड़ों से तस्वीर ज्यादा स्पष्ट रूप में उभरती है। इनसे पता चलता है कि 1686 ई. तक लगभग पचास प्रतिशत गांवों की मापी नहीं हुई थी।

औरंगजेब के शासनकाल के उपलब्ध आंकड़ों को देखने से पता चलता है कि इस काल में **आइन** (1595 ई.) की तुलना में मापित इलाके का फैलाव बढ़ा था। पर यह कहना मुश्किल है कि मापी गयी भूमि में यह बढ़ोतरी खेती के विस्तार के कारण हुई थी। ऐसा भी हो सकता है कि पहले आंकड़ों में कुछ खेती होने वाली भूमि की माप शामिल नहीं थी और बाद में इस भूमि को माप कर आंकड़ों में शामिल कर लिया गया हो।

विद्वानों के बीच यह विवाद का विषय है कि इन माप संबंधी आंकड़ों से वस्तुतः क्या परिलक्षित होता है। इनसे उठने वाले कुछ प्रश्न हैं: क्या इन आंकड़ों से वास्तविक रूप से जोती गई भूमि का पता चलता है, या कुल खेती योग्य भूमि या कुल मापे गये क्षेत्र का बोध होता है। डब्ल्यू-एच-मोरलैंड का मानना था कि ये आंकड़े इस क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसमें फसल बोई जाती थी।

इरफान हबीब का मानना है कि इसमें कृषि योग्य ऐसी भूमि जिसमें कुछ बोया नहीं गया हो तथा रहने वाले इलाके, झील, तालाब, जंगल के कुछ भागों आदि को भी शामिल किया गया होगा। शीरीन मूसवी इरफान हबीब के मत का समर्थन करती है और गणना करके बताती है कि मापे गये इलाके में दस प्रतिशत खेती योग्य परती जमीन भी शामिल होती थी। लेकिन वे यह महसूस करती हैं कि इस दस प्रतिशत को निकालने के बावजूद शेष क्षेत्र को कुल फसल क्षेत्र के रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता है क्योंकि खेती की जाने वाली भूमि का काफी हिस्सा मापा नहीं जा सका था। उनका यह भी मानना है कि खरीफ और रबी फसलों की भूमि को कई बार अलग-अलग मापा जाता था और बाद में दोनों को जोड़कर मापा गया क्षेत्र अंकित किया जाता था।

इस स्थिति में, खेती के प्रसार को जानने के लिए मुगल काल के केवल माप संबंधी आंकड़ों से बहुत मदद नहीं मिलती है। इरफान हबीब और शीरीन मूसवी ने कुछ राजस्व प्रपत्रों में उपलब्ध विस्तृत आंकड़ों, जमा (अनुमानित राजस्व) आंकड़ों और **दस्तूर** दरों (नगद राजस्व दरों) जैसे स्रोतों का भी सहारा लिया है। इन्होंने बीसवीं शताब्दी के आरंभ में वास्तविक जोती गई भूमि के आंकड़ों से इनकी तुलना की है।

उनके प्राक्कलन के अनुसार 16वीं शताब्दी से 20वीं शताब्दी के बीच खेती की गई भूमि का फैलाव लगभग दोगुना हो गया। बिहार, अवध और बंगाल के कुछ भागों में जंगलों को साफ करने से खेती योग्य भूमि में विस्तार हुआ। पंजाब और सिंध में नहर सिंचाई व्यवस्था के विकास होने से खेती का विस्तार हुआ।

21.3 खेती और सिंचाई के साधन

मिट्टी की प्रकृति और फसलों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए भारतीय किसान कई प्रकार के औजार और तकनीकों का सहारा लिया करते थे। इसी प्रकार, विभिन्न प्रांतों में सिंचाई के विभिन्न साधन उपलब्ध थे।

21.3.1 खेती के साधन और तरीके

प्रमुख रूप से हल में दो बैलों को जोतकर खेत जोता जाता था। हल लकड़ी का बना होता था जिसमें लोहे का फाल लगा होता था। यूरोप की तरह भारत में घोड़ों या बैल द्वारा खींचे जाने वाली पहियेदार हल और सांचा पट्ट का उपयोग नहीं होता था। भारत में क्षेत्रीय विभिन्नताओं के कारण हल के आकार और वजन में फर्क होता था। हलके हल (इतने हलके जिन्हें) किसान अपने कंधों पर भी उठा सकता था से लेकर काफी भारी हलों का उपयोग किया जाता था। कड़ी मिट्टी के लिए अधिकांशः भारी हलों का प्रयोग होता था। हलकी मिट्टी वाले क्षेत्र में हल के फाल में लोहा नहीं लगाया जाता था क्योंकि लोहे की कीमत भी ज्यादा होती थी। कई समकालीन यूरोपीय यात्रियों ने यह देखकर आश्चर्य प्रकट किया है कि भारतीय हलों द्वारा केवल मिट्टी को उलट दिया जाता था और गहरी जोताई नहीं की जाती थी। ऐसा लगता है कि यह भारतीय महाद्वीप के अनुकूल था क्योंकि गहरी जोताई करने से मिट्टी की नमी कम होने का खतरा रहता था। इसके अलावा केवल ऊपरी सतह ही अधिक उपजाऊ होती थी। मिट्टी के ढेलों को तोड़ने के लिए अलग तरीका अपनाया जाता था। इस कार्य के लिए पटेला कही जाने वाले लकड़ी के तख्ते का प्रयोग किया जाता था। हल की तरह इस चपटे तख्ते को भी दो बैलों की सहायता से खींचा जाता था। आमतौर पर वजन डालने के लिए इस पर एक आदमी खड़ा हो जाता था। खेत में पटेला को बैल खींचते थे।

बीजारोपण का काम आमतौर से बीजों की खेत में हाथ से छींट कर किया जाता था। सोलहवीं शताब्दी में तटीय क्षेत्रों में बारबोसा धान रोपने के लिए एक प्रकार के बीज बरमे के उपयोग का विवरण देता है।

कृत्रिम तरीकों से मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के लिए विभिन्न तरीकों का प्रयोग किया जाता था। दक्षिण में बकरों और भेड़ के झुंडों का इस कार्य के लिए खूब उपयोग किया जाता था। आमतौर पर इन पशुओं के झुंड को रात भर के लिए खेत में छोड़ दिया जाता था जहां वे अपना मल त्याग करते थे और यह अच्छी खाद का काम करता था। यह माना जाता था कि अगर 1000 का झुंड एक **कानी** खेत (1.32 एकड़) में पांच-छह दिन व्यतीत करे तो यह अगले छह-सात वर्षों के लिए खेत को उपजाऊ रखने के लिए उपयुक्त होता है। (**कैम्ब्रीज इक्नॉमिक हिस्ट्री, खंड 1, पृष्ठ 231**)। इसी प्रकार की प्रथा आमतौर पर उत्तरी भारत में भी प्रचलित थी। तटीय प्रदेशों में मछली की खाद भी उपयोग में लायी जाती थी।

पूरे वर्ष भूमि का अधिकतम उपयोग करने के लिए फसलों को बदल-बदल कर उगाया जाता था। मिट्टी की उत्पादकता की दृष्टि से भी इसे अच्छा माना जाता था। परम्परागत अनुभव से किसान फसल को बदल बदलकर बोने की सार्थकता से परिचित हो चुके थे। वे यह निर्णय किया करते थे कि अच्छे उत्पादन के लिए किस फसल के बाद कौन सी फसल लगाई जानी चाहिए।

फसल काटने के लिए अर्द्ध वृत्ताकार हंसुए का उपयोग किया जाता था। अनाज को अलग करने के लिए काटी गई फसल को जमीन पर फैला दिया जाता था। हमारे स्रोतों में इस फसल से दाना अलग करने के दो तरीकों का जिक्र मिलता है: पहले तरीके में फसल को डंडे से पीटा जाता था, दूसरे तरीके में फैली हुई फसल पर जानवरों को घुमाया जाता था। जानवरों के भार और चलने फिरने से अनाज फसल से अलग हो जाता था। अलग किया हुआ अनाज टोकरी में भर दिया जाता था और एक नियंत्रित गति के साथ उसे गिराया जाता था। हवा के प्रभाव से भूंसा बिखर जाता था और अनाज जमीन पर गिर जाता था।

21.3.2 सिंचाई के साधन

भारतीय कृषि बहुत हद तक वर्षा पर निर्भर करती थी। किसी क्षेत्र विशेष में फसलों को लगाने से पहले वर्षा के जल की उपलब्धता को मुख्य रूप से ध्यान में रखा जाता था। वर्षा जल के अतिरिकत सिंचाई के कृत्रिम साधनों का भी उपयोग किया जाता था।

पूरे देश में कुएं द्वारा सिंचाई की जाती थी। कुएं से पानी को निकालने के लिए विभिन्न उपलब्ध तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता था। यह तकनीक इस बात पर भी निर्भर करती थी कि कुंआ कितना गहरा है।

ऐच्छिक पाठ्यक्रम-03 के खंड 6 में पानी खींचने के कई तरीकों पर विचार किया गया है। यहां हम पानी खींचने के तरीकों का संक्षेप में उल्लेख करने जा रहे हैं।

उत्तर भारत में कच्चे और पक्के दोनों प्रकार के कुंए खोदे जाते थे। कच्चे कुएं अधिक टिकाऊ नहीं होते थे और इनमें हर साल कुछ खुदाई करनी पड़ती थी। पक्के कुंए टिकाऊ होते थे और इन कुओं से पानी निकालने की तकनीक का आसानी से उपयोग किया जा सकता था। पक्के कुएं की दीवारें उठी होती थी और उनके ऊपर एक घेरा या चबूतरा बना होता था। कुओं कि दीवारें बनाने के लिए पत्थर या ईंटों का प्रयोग होता था। इन कुओं के बनाने में पक्की हुई मिट्टी के वृत्ताकार घेरों या छल्लों को एक के ऊपर एक कुंए की गोलार्द्ध में बिठाया जाता था इन्हें वृत्तीय कुएं भी कहते थे। इन कुओं से पानी खींचने के लिए अनेक तरीके अपनाए जाते थे।

i) रस्सी और बाल्टी के सहारे हाथों से पानी निकालना सबसे आसान तरीका था जिसमें किसी प्रकार के यंत्र की सहायता नहीं ली जाती थी। अपनी सीमित क्षमता के कारण इसका उपयोग बड़े खेतों की सिंचाई के लिए नहीं किया जा सकता था।

ii) दूसरे तरीके में कुंओं के ऊपर धुरी लगा दी जाती थी। धुरी में रस्सी और बाल्टी को लगा दिया जाता था और पहले तरीके की तुलना में शक्ति का उपयोग कर अधिक पानी निकाला जा सकता था। इन दोनों तरीकों का उपयोग घरेलू आपूर्ति और बहुत छोटे खेतों की सिंचाई के लिए किया जाता था।

iii) एक तीसरे तरीके में रस्सी और धुरी के तरीके से पानी निकालने में बैलों का भी उपयोग किया जाता था। इस प्रणाली में पशु शक्ति का उपयोग करने से बड़े क्षेत्रों की सिंचाई संभव हो सकी।

iv) चौथी प्रणाली में उतोलक (लीवर) सिद्धांत का उपयोग किया जाता था। इस प्रणाली के एक लम्बे पेड़ के तने या बांस को एक पेड़ की दो शाखाओं के बीच इस प्रकार फंसा देते हैं कि वह झूले के समान हो जाता था। उसके एक सिरे पर कसकर रस्सी बांध दी जाती थी और पिछले हिस्से में एक भारी पत्थर लटका दिया जाता था। अगले हिस्से की रस्सी में बाल्टी को बांध दिया जाता था। पिछले हिस्से का वजन पानी भरी बाल्टी से अधिक होता था। इसे एक आदमी चला सकता था। (विवरण के लिए पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-03 का खंड 6 देखिए)।

v) पांचवी प्रणाली में चक्के का उपयोग किया जाता था। आरंभ में चक्के के ऊपर वर्तन लगा दिये जाते थे जिसे जानवर की सहायता से घुमाया जाता था। इस प्रकार के चक्के से केवल छिछले स्तर से ही पानी निकाला जा सकता था और कुंओं के लिए

इसका कोई उपयोग नहीं था। चक्के या पहिए के परिवर्तित रूप का उपयोग कुंए से पानी निकालने के लिए भी किया जाता था। इसमें कई बर्तनों की माला सी बनाई जाती थी और इसमें तीन चक्कों के गेयर की तकनीक और पशु शक्ति की सहायता ली जाती थी। (विवरण के लिए ई.एच.आई.-03 का खंड 6 पढ़िए) इसकी सहायता से बड़े खेतों में काफी मात्रा में पानी पहुंचाया जा सकता था। इससे गहरे कुंओं से भी पानी निकाला जा सकता था। जटिल यंत्र और पशु शक्ति के उपयोग के कारण यह तरीका खर्चीला होता होगा। अतः इसका उपयोग सम्पन्न किसान ही किया करते होंगे।

पूरे देश में झीलों, तालाबों और जलाशयों का उपयोग एक समान होता था। दक्षिण भारत में यह अधिक लोकप्रिय प्रणाली थी। यहां नदियों के ऊपर बांध बनाए गए। इन जलाशयों का निर्माण व्यक्तिगत उद्यम से नहीं हो सकता था। अतः इस प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध कराना राज्य, स्थानीय सरदारों और मंदिर प्रबंधन की जिम्मेदारी थी। विजयनगर के शासकों द्वारा बनवाई गई विशाल मडग झील उस समय के नागरिक अभियंत्रिकी का उत्तम नमूना थी। इसे तुंगभद्र नदी को तीन तरफ से घेरकर बनाया गया था। इसके लिए तीन पहाड़ियों के बीच तीन बांध बनाए गए थे। भरी होने पर यह झील 10-15 मील लंबी थी। इन तीनों बांधों में बड़े-बड़े पत्थरों से निर्मित जलद्वार बने हुए थे।

राजस्थान में भी पानी जमा करने के लिए जलाशयों का निर्माण किया जाता था। **आइन-ए अकबरी** के अनुसार मेवाड़ की धेबर झील 36 मील में फैला हुई था। कहा जाता है उदय सागर 12 मील के क्षेत्र में फैला था, राजसमंद और जयसंमंद 17वीं शताब्दी में मेवाड़ में बनी अन्य महत्वपूर्ण झीलें थी। मारवाड़ और आमेर प्रातों में बांधों की सहायता से क्रमशः बालसमंद और मानसागर नामक जलाशयों का निर्माण किया गया। लगभग सभी गांवों में जलाशय और झील बने थे जहां वर्षा का पानी एकत्र किया जाता था। हमारे स्रोतों से पता चलता है कि 1650 के दशक में मुगल प्रशासन ने खानदेश और बरार में सिंचाई के लिए बांध निर्माण करने हेतु किसानों को 40,000-50,000 रुपये तक अग्रिम देने का प्रस्ताव रखा था। यह एक रोचक तथ्य है कि आज भी खानदेश में ऐसे छोटे बांधों का उपयोग किया जाता है और ये इस क्षेत्र की मोसम, गिरना, केन, पंजबरा, शिवान नामक पांच प्रमुख नदियों के द्रोणी क्षेत्र को सिंचित करते हैं।

उत्तरी मैदानी भागों में नहरों का उपयोग सिंचाई के प्रमुख साधन के रूप में किया जाता था हम ऐच्छिक पाठ्यक्रम 3 के खंड 6 में चौदहवीं शताब्दी में सुल्तान फिरोज तुगलक द्वारा बनवाई गई नहरों के बारे में पढ़ चुके हैं। यह प्रवृति मुगलों के काल में भी जारी रही। शाहजहां ने 150 मील लंबी फैज नामक नहर बनवाई थी। इसके द्वारा यमुना का जल विस्तृत क्षेत्र में पहुंचाया जाता था। इसी प्रकार लाहौर के निकट रावी नदी से 100 मील लंबी नहर निकाली गई थी। पूरे सिंधु नदी के मुहाने में कई नहरों के अवशेष पाए जाते हैं। इरफान हबीब का मानना है कि मुगल नहरों में सबसे बड़ी कमी यह थी कि वे अक्सर आसपास के स्तर से ऊपर नहीं उठी होती थीं अतः उनसे की गई सिंचाई इस बात पर निर्भर करती थी कि उनसे कितना पानी निकाला जा सकता था। इस क्षेत्र में नहरों की संख्या लगातार बढ़ती रही। दक्षिण भारत में नहरों की जानकारी नहीं मिलती है।

बोध प्रश्न 1

1) मुगल काल में उपयोग में लाए जाने वाले हलों पर तीन पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

2) मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के लिए अपनाई गई तीन विधियों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

3) खेतों की सिंचाई करने के लिए कुंओं से पानी निकालने की तीन विधियों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

4) सिंचाई के काम में आनेवाली तीन झीलों या बांधों का नाम बताइए।

....

....

....

....

....

21.4 कृषि उत्पाद

भारत के विस्तृत भू-भाग, विभिन्न प्रकार की मिट्टियों और पर्यावरणीय वातावरण के कारण यहां कई प्रकार के कृषि उत्पादों का उत्पादन होता है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम इन कृषि उत्पादों को तीन हिस्सों—खाद्यान्न फसल, नगदी फसल और फल, सब्जी और मसालों में बांटकर विचार करेंगे।

21.4.1 खाद्यान्न उत्पादन

उत्तर भारत की अधिकांश मौसमी फसलें दो प्रमुख फसल ऋतुओं खरीफ (शरद) और रबी (बसंत) में उगाई जाती थी। कुछ किसान इनके बीच लघु अवधि की फसलें उगाकर कभी-कभी तीन फसलें भी उपजा लिया करते थे। प्रमुख खरीफ धान या चावल और प्रमुख रबी फसल गेहूं थी। दक्षिण भारत में इस प्रकार का विभाजन नहीं था जिसमें अलग मौसमों में अलग फसल उपजाई जाती हो। यहां सिंचित भूमि पर धान (चावल) की एक फसल जून-जुलाई से दिसम्बर/जनवरी और दूसरी फसल जनवरी/फरवरी से अप्रैल/मई तक उगाई जाती थी। उत्तरी आर्कोट में भूमि पर मई से सितम्बर/अक्टूबर तक सूखी फसलें (कुम्बु, लाल चना, घोड़ा चना और अरंडी) बोई जाती थी और इन्हें अगस्त से दिसम्बर/जनवरी तक काटा जाता था, अगस्त सितम्बर में रागी और छोलम तथा फरवरी/मार्च में धान की फसलें काटी जाती थी (**कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री, पृ० 229**)।

गेहूं और चावल पूरे देश की दो महत्वपूर्ण फसलें थी। अधिक वर्षा (40″ से 50″) वाले क्षेत्रों में धान का उत्पादन अधिक होता था। सम्पूर्ण उत्तर पूर्व, पूर्वी भारत (बिहार, बंगाल, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग), गुजरात का दक्षिणी तटीय प्रदेश और दक्षिण भारत प्रमुख धान उत्पादक क्षेत्र थे। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है दक्षिण भारत में चावल

उत्पादन के **कुद्दपाह-कर** और **साम्बा-पेशानम** दो प्रमुख मौसम थे। इनका नामकरण गर्मी और जाड़े के मौसम में उपजाउ जानेवाले मुख्य धान के प्रकार पर आधारित था।

पंजाब और दक्खन के सिंचित इलाकों से भी धान की खेती की जानकारी मिलती है। प्रत्येक क्षेत्र में अलग किस्म का मोटा, साधारण और अच्छी कोटि का धान या चावल उपजाया जाता था। बंगाल और बिहार क्षेत्रों में उत्तम कोटि का चावल उपजाया जाता था।

चावल के समान गेहूं के भी कुछ खास इलाके थे। पंजाब, सिंध, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और अन्य कम वर्षा वाले क्षेत्र में गेहं उपजाया जाता था। बिहार, गुजरात, दक्खन और यहां तक कि बंगाल के कुछ भागों में भी इसके उत्पादन का हवाला मिलता है।

इन दोनों फसलों के अतिरिक्त मध्य मैदानी भागों में जौ का खूब उत्पादन होता था। **आइन-ए अकबरी** में इलाहाबाद, अवध, आगरा, अजमेर, दिल्ली, लाहौर और मुल्तान आदि में भी जौ के उत्पादन का उल्लेख मिलता है।

कुछ अपवादों को छोड़कर गेहूं वाले इलाकों में ज्वार और बाजरा भी उपजाया जाता था।

विभिन्न प्रांतों में दालों के उगाए जाने की भी जानकारी मिलती है। इनमें चना, अरहर, मूंग मोठ, उड़द और खेसाड़ी (अंतिम काफी मात्रा में बिहार और आधुनिक मध्यप्रदेश के इलाके में उपजाया जाता था) की दालें प्रमुख हैं। हालांकि अबुल फजल बताता है कि खिसाड़ी का सेवन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता था। आधुनिक शोध भी इसे प्रमाणित करते हैं।

काफी समय तक यह समझा जाता था कि 17वीं शताब्दी में भारत में मकई या मक्का का उत्पादन नहीं होता था। कुछ नए शोधों से यह साबित हो चुका है कि 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में से राजस्थान और महाराष्ट्र में निश्चित रूप से और संभवत: अन्य प्रांतों में भी यह उपजाया जाता था।

21.4.2 नगदी फसल

मुख्य रूप से बाजार के लिए उपजाई जाने वाली फसलों को आमतौर पर नगदी फसल कहते थे। फारसी विवरणों में इन्हें **जिन्स-ए कामिल** या **जिन्स-ए आला** (सर्वोतम कोटि की फसल) कहा गया है। खाद्यान्न फसलों के विपरीत ये पूरे वर्ष खेतों में खड़ी रहती थी। 16वीं-17वीं शताब्दी की नगदी फसलों में गन्ना, कपास, नील और अफीम प्रमुख थे।

ये सभी फसलें भारत में पुरातन काल से उपजाई जा रही थीं। 17वीं शताब्दी में कारीगर उत्पादन और वाणिज्यिक गतिविधियों के बढ़ने के कारण उनकी मांग में वृद्धि हुई थी। इस काल में इन वस्तुओं के लिए एक विशाल विदेशी बाजार का द्वार भी खुल गया। भारतीय किसानों ने बाजार की मांग को तेजी से पहचाना और इन फसलों का उत्पादन तेज कर दिया।

इस काल में नगदी फसलों में सबसे ज्यादा खेती गन्ने की होती थी। **आइन-ए अकबरी** के अनुसार आगरा, अवध, लाहौर, मुल्तान और इलाहाबाद के अधिकांश राजस्व क्षेत्रों (**दस्तूर** प्रखंडों) में गन्ना उगाया जाता था। बंगाल में उगाया जाने वाला गन्ना सर्वोतम कोटि का माना जाता था। 17वीं शताब्दी के दौरान मुल्तान, मालवा, सिंध, खानदेश, बरार और दक्षिण भारत के क्षेत्रों में भी गन्ना उपजाया जाता था।

इसके अलावा एक और नगदी फसल, कपास, पूरे भारत में उपजाई जाती थी। आज के महाराष्ट्र, गुजरात और बंगाल के इलाके में उस समय वृहद् पैमाने पर कपास की खेती की जाती थी। समकालीन स्रोत अजमेर, इलाहाबाद, अवध, बिहार, मुल्तान, थट्टा (सिंध) लाहौर और दिल्ली में भी इसके उत्पादन का हवाला देते हैं।

मुगलों के शासनकाल में नील (एक नगदी फसल) का भी बृहद् पैमाने पर उत्पादन होता था। इस पौधे से नील निकलता था जिसकी मांग भारत के साथ-साथ यूरोपीय बाजारों में

भी थी। अवध, इलाहाबाद, अजमेर, दिल्ली, आगरा, लाहौर, मुल्तान और सिंध के दस्तुर प्रखंडों में नील उगाए जाने की सूचना मिलती है। गुजरात, बिहार, बंगाल मालवा और दक्षिण भारत में कोरोमंडल और दक्खन में इसके उत्पादन का हवाला मिलता है। बयाना और सरखेज के उत्पाद की मांग सबसे ज्यादा थी। आगरा के निकट बयाना में उगाई जाने वाली नील को उत्तम कोटि का माना जाता था और इसका मूल्य भी ज्यादा होता था। इसके बाद अहमदाबाद के निकट सरखेज में उपजाये जाने वाले नील का स्थान आता था और यह भी ऊंचे दामों में बिकता था। खुर्जा और अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश), सेहवान (सिंध) और तेलंगाना (दक्खन) में भी उच्च कोटि के नील का उत्पादन होता था।

भारत के कई भागों में अफीम की खेती होने की भी सूचना मिलती है। मुगल प्रांतों बिहार और मालवा में अच्छी कोटि की अफीम का उत्पादन होता था। यह अवध, दिल्ली, आगरा, लाहौर, बंगाल, गुजरात और राजस्थान में मारवाड़ और मेवाड़ में भी उगाया जाता था।

ऐसा लगता है कि कम अवधि में ही भारत में तम्बाकू का उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगा। **आइन-ए अकबरी** में किसी **दस्तूर** प्रखंड या किसी अन्य क्षेत्र में इस फसल का उल्लेख नहीं किया जाता है। ऐसा लगता है कि 16वीं शताब्दी में पुर्तगाली इसे अपने साथ भारत लाए। शीघ्र ही इसकी खेती देश के लगभग सभी भागों में होने लगी (खास कर सूरत और बिहार में)।

ऐसा लगता है कि 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में काफी का उत्पादन शुरू हो गया था पर हमारे अध्ययन काल में चाय का उल्लेख नहीं मिलता है। सन रेशे वाला एक पौधा होता है जो मुगल साम्राज्य के मुख्य प्रातों (अवध, इलाहाबाद, आगरा लाहौर, अजमेर, आदि) में उपजाया जाता था।

बंगाल, असम, कश्मीर और पश्चिम तटीय प्रदेशों में रेशम का उत्पादन किया जाता था। हालांकि बंगाल मुख्य उत्पादन क्षेत्र था।

तिलहन खाद्यान्न के साथ-साथ नगदी फसल भी थी। इससे तेल निकाला जाता था। तोरी का बीज, अरंडी, तीसी प्रमुख तेलहन फसलें थीं। यह इलाहाबाद से लेकर मुलतान और बंगाल सहित सभी प्रांतों में उपजाई जाती थी। तिलहन के अन्य प्रकारों को कम ही उपजाया जाता था।

21.4.3 फल, सब्जी और मसाले

मुगल काल में बागबानी अपने चरम शिखर पर थी। मुगल सम्राटों और सामंतों ने भव्य फलोद्यान लगवाए थे। लगभग सभी प्रभावशाली सामंतों के पास अपने शहर के बाहर एक बागान हुआ करता था। इन फलोद्यानों और निकुंजों को सावधानीपूर्वक योजनाबद्ध ढंग से निर्मित किया जाता था। आज भारत में उपलब्ध बहुत से फलों का आगमन 16वीं-17वीं शताब्दी में ही हुआ था। अनानास एक ऐसा ही फल है जो भारत में पुर्तगालियों द्वारा लैटिन अमेरिका से लाया गया था। कम समय में यह फल लोकप्रिय हो गया और पूरे भारत में बड़े पैमाने पर उगाया जाने लगा।

पपीता और काजू भी यही अपने साथ लेकर आए थे पर इसका विस्तार धीमी गति से हुआ। लीची और अमरूद का आगमन बाद में हुआ। काबुल से चेरी लाई गई और कलम लगाकर इसे कश्मीर में उपजाया गया। कलम की तकनीक से कई फलों की किस्म में सुधार हुआ। कलम के द्वारा संतरा, गलगल (नींबू वंश) खूबानी, आमों और अन्य कई फलों की किस्मों में सुधार लाया गया। नारियल केवल तटीय प्रदेशों में ही नहीं बल्कि अंदरूनी इलाकों में भी उगाया जाता था।

काबुल से खरबूजे और अंगूर के विभिन्न प्रकारों के बीज लाए गए और उन्हें सम्राटों और राजाओं के बागीचों में सफलतापूर्वक उगाया गया। साधारण किस्म का खरबूजा किसानों द्वारा नदी के किनारे हर जगह उपजाया जाता था।

कई तरह की सब्जियां पूरे देश में उपजाई जाती थी। उस समय उपयोग में आने वाली सब्जियों की लंबी सूची **आइन-ए अकबरी** में दी गयी है ऐसा लगता है कि आलू और टमाटर का आगमन 17वीं शताब्दी और उसके बाद हुआ।

शताब्दियों से भारत अपने मसालों के लिए जाना जाता था। भारत के दक्षिण तट से एशिया और यूरोप के विभिन्न देशों को बड़े पैमाने पर मसाले का निर्यात किया जाता था। काली मिर्च, लौंग, इलायची का खूब उत्पादन होता था। अदरख और हल्दी भी बड़े पैमाने पर उपजाया जाता था। डच और अंग्रेज इसे बड़ी मात्रा में खरीदकर निर्यात करते थे। केसर कशमीर में उगाया जाता था जो अपने रंग और सुगंध के लिए जाना जाता था। पान का उत्पादन कई इलाकों में होता था। बिहार का मगही पान और बंगाल में उपजाए जाने वाले अन्य प्रकार प्रसिद्ध थे। तटीय प्रदेशों में सुपारी का भी उत्पादन होता था।

विशाल वन सम्पदा से भी कई महत्वपूर्ण वाणिज्यिक वस्तुएं प्राप्त होती थी। लिग्नम का उपयोग दवा बनाने के लिए होता था और लाख बड़ी मात्रा में निर्यातित होता था।

21.4.4 उत्पादकता और उपज

शीरीन मूसवी ने मुगल भारत में फसल की उत्पादकता और प्रति बीघा उपज पर प्रकाश डाला है (**द इक्नॉमी ऑफ मुगल अम्पायर, अध्याय** 3) इस भाग में हम उनके शोधों के आधार पर ही आपको निम्न जानकारी दे रहे हैं। **आइन-ए अकबरी** में फसल उपज की तालिका और **जब्ती** प्रांतों (लाहौर, मुल्तान, आगरा, इलाहाबाद, अवध और दिल्ली), की राजस्व दरों का उल्लेख किया गया है। उच्च, मध्यम और निम्न कोटि की फसलों की उपज का अलग से उल्लेख किया गया है। इनके आधार पर औसत उपज निकाली जा सकती है। हालांकि अबुल फजल इन तीनों कोटियों के आधार के बारे में हमें कुछ नहीं बताता है। ऐसा लगता है कि कम उत्पादकता वाली फसल का संबंध गैर सिंचित क्षेत्र से और शेष दोनों प्रकार की फसलों का संबंध सिंचित क्षेत्र से था।

शीरीन मूसवी ने 16वीं शताब्दी के प्राप्त आंकड़ों को आधार बनाकर कृषि उत्पादकता के क्षेत्र में रोशनी डाली है। उनके आकलन के अनुसार कुछ प्रधान फसलों की उपज (उच्च, मध्यम और निम्न उपज का औसत) इस प्रकार थी :

औसत फसल उपज : 1595-96 ई.
(मन-ए अकबरी प्रति **बीघा-ए इलाही)**

गेहूं : 13.49	**जौ** : 12-93	**चना** : 9.71
बाजरा : 5.02	**ज्वार** : 7.57	**कपास** : 5.75
गन्ना : 11.75	**सरसों** : 5.13	**तिल** : 4.00

(इक्नॉमी ऑफ मुगल एम्पायर लगभग 1595, एक सांख्यिकीय अध्ययन, पृष्ठ 82)।

शीरीन मूसवी ने **आइन-ए अकबरी** में दी गयी उपज की तुलना 19वीं शताब्दी के आसपास की उपज के साथ की है। उनका मानना है कि इन दो कालों के बीच खाद्यान्न फसलों की उत्पादकता में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ था। हालांकि जहां तक नगदी फसलों का संबंध है इसमें 19वीं शताब्दी के दौरान उत्पादकता में निश्चित रूप से वृद्धि हुई थी।

21.5 पशु और पशुधन

हमारे काल के कृषि उत्पादन में पशुओं की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। हल जोतने और सिंचाई करने में उनसे सहायता ली जाती थी और उनके गोबर का खाद के रूप में उपयोग होता था। दुग्ध उत्पादन के अतिरिक्त कृषि सम्बन्धी उत्पादन में भी ये काफी योगदान देते थे। आमतौर पर किसान और कुछ खास जाति के लोग पशु पालन का कार्य करते थे।

कृषि कार्यों में बड़े पैमाने पर पशुओं के योगदान से यह पता चलता है कि पशुधन की संख्या भी काफी रही होगी। प्रति व्यक्ति भूमि के ऊंचे अनुपात के कारण चारागाह भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहा होगा। समकालीन यूरोपीय यात्री भारतीय खेतों में बड़ी संख्या में जानवरों की उपस्थिति का उल्लेख करते हैं। इरफान हबीब का मानना है कि आज की तुलना में मुगल भारत में प्रति व्यक्ति पशुओं की संख्या अधिक थी। कहा जाता है कि आम आदमी भी मक्खन और घी का उपयोग करता था, इससे भी बड़ी संख्या में पशुओं के होने का पता चलता है। बैलों का उपयोग बैलगाड़ी खींचने या भारवाही पशु के रूप में होता था। बंजारों (घुमंतु व्यापारी समुदाय) के पास सैंकड़ों-हजारों जानवर होने का उल्लेख मिलता है। भेड़ों और बकरियों को भी हजारों के झुंड में पाला जाता था।

बोध प्रश्न 2

1) छह मुख्य खाद्यान्न फसलों के नाम बताइए :

   1. .... 2. ....
   3. .... 4. ....
   5. .... 6. ....

2) खाद्यान्न फसल, नगदी फसल और तेलहन फसल से आप क्या समझते हैं?

   ....
   ....
   ....
   ....
   ....

3) चार प्रमुख नगदी फसलों का उल्लेख कीजिए :

   1) .... 2) ....
   3) .... 4) ....

4) बाहर से भारत में लाए गए चार फलों का नाम बताइए?

   1) .... 2) ....
   3) .... 4) ....

21.6 सारांश

समकालीन विदेशी पर्यवेक्षक कृषि औजारों की पुरातनता और सरलता की बात करते हैं पर यह भारतीय कृषि के अनुकूल था। कृषि मुख्य रूप से वर्षा जल पर निर्भर थी पर कृत्रिम सिंचाई के तरीके भी अपनाए जाते थे। कुंओं से पानी निकालने के लिए ढेकली, चरस और साकिया (कुएँ से पानी निकालने की पारसी विधि) फारसी जैसे तरीकों का उपयोग किया जाता था। तालाब और जलाशयों के अतिरिक्त कुछ सीमा तक नहर सिंचाई के प्रमुख स्रोत थे।

भारतीय किसान कई प्रकार के खाद्यान्न और नगदी फसलें उपजाया करते थे। कुछ खेतों में दो या उससे अधिक फसल उगाई जाती थी। फसलों को बदल-बदल कर लगाना और बाजार की आवश्यकताओं के अनुरूप नगदी फसल की खेती करना इस युग की खास विशेषताएं हैं। गुणवता और परिमाण दोनों ही मानदण्डों पर इस काल के फल उच्च कोटि के थे।

19वीं शताब्दी की आधुनिक उपज और उत्पादन की तुलना में भी उस समय की उत्पादकता और उपज खरी उतरती है। मुगल काल में पशु और पशुधन की प्रति व्यक्ति जनसंख्या भी काफी अच्छी थी।

21.7 शब्दावली

बीघा-ए इलाही : 60 वर्ग **गज-ए इलाही** (अकबरी गज) **गज-ए इलाही** की लंबाई लगभग 32 इंच होती थी। एक **बीघा-ए इलाही** में एक एकड़ का लगभग 60 अंश होता था।

दस्तूर प्रखंड : ऐसा क्षेत्र जिसमें अलग-अलग फसलों के लिए कुछ नगद राजस्व दर लगाई जाती थी, पूरा प्रांत विभिन्न **दस्तूर** प्रखंडों में विभक्त होता था, प्रत्येक दस्तूर में राजस्व दरें अलग होती थीं।

दस्तूर दरें : विभिन्न फसलों के प्रति इकाई क्षेत्र के लिए नगद राजस्व दरें।

जमा : आकलित या अनुमानित आय

मन-ए अकबरी : वजन मापने की इकाई जो 55 पौंड के आसपास होती थी।

हल का फाल : हल का नुकीला निचला हिस्सा जिससे खेत जोता जाता था। यह लोहे या कड़ी लकड़ी का बना होता था।

21.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आमतौर पर बैलों द्वारा खींचे जाने वाले हलके हल का उपयोग होता था। देखिए उपभाग 21.3.1

2) आप इसमें फसलों के बदलाव और विभिन्न प्रकार के उर्वरकों के उपयोग आदि का उल्लेख कर सकते हैं। देखिए उपभाग 21.3.1

3) पढ़िए उपभाग 21.3.2 आप कम मात्रा में पानी निकालने की विधियों को छोड़कर शेष का उल्लेख कर सकते हैं।

4) देखिए उपभाग 21.3.2

बोध प्रश्न 2

1) उपभाग 21.4.2 पढ़िए और उत्तर दीजिए।

2) बाजार के लिए उत्पादित फसल को नगदी फसल कहते थे। खाद्यान्न फसल बाजार में भी बेची जाती थी और इनका उपभोग स्वयं के भोजन के लिए भी किया जाता था। तिलहन फसलों से खाद्य तेल निकाला जाता था। देखिए भाग 21.4

3) देखिए उपभाग 21.4.2

4) देखिए उपभाग 21.4.3